(४४) चतुःषष्टिमणिमाला - ~~पीठिका~~
चौथी कला - ~~पौरुषी~~
१
(उपआख्यान १२)

(४-१) ॥ ऋग्वेदसंहिता ॥
(वाङ्मय) (१)

१ ऋग्वेदसंहिता - दशमण्डलके - मंत्रोंके ऋषि देवता छन्द और उनकी सूची, मंत्रसंख्या सूक्तादिसंख्या -
संहिता - पद - क्रम - ~~[illegible]~~ - रूप प्रकृति पाठ - "जटा माला शिखा दण्डः इत्यादि अष्ट विकृति पाठः पर्यन्त - ऋग्वेदमें दशग्रन्थोंकी अध्ययनकी परम्परा -

(४-२) (वस्तु - और विज्ञान) (२)

२ उन्हीं मंत्रोंके देवतादि वस्तुओंके ज्ञान और उनके तत्त्वोंके विज्ञानके बारेमें समर्थन - ~~[illegible]~~
वाग् - वस्तुओंका अन्योन्यजन्यत्व, - वस्तुस्वरूप पुरुषसे वाणीका प्रादुर्भाव, और वाच्यकर्ता विरूप वाणीसे वस्तुका प्रादुर्भाव - ~~जन्म~~ ज्ञानरूपसे जन्म[illegible]
अदिति और आदित्यका उदाहरण, अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि (ऋ॰
अपि वा अन्योन्यजन्मानौ स्यातां देवधर्मेण (नि॰)
"यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः छन्दोभ्योऽध्यमृतात् सम्बभूव (शिक्षो॰)
और इन्द्र - छन्दोंकी अन्योऽन्याविर्भावः॥ तस्मात् [illegible] इत्यत्रापि [illegible] तत्त्व है।

(४-३) कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयसंहिता - (वाङ्मय) १

३ यजुर्वेद तैत्तिरीयशाखा - यजुर्मंत्रोंकी संख्या - अध्याय - (अनुवाक) और इनके विभाग की मर्यादा - दर्शपूर्णमासादि यज्ञसंस्थाका विचार - काण्डका विभाग
बीचबीचमें ऋङ्मंत्रोंका पाठ - और ब्राह्मणभागोंका पाठ -
सारस्वत पाठ क्रममें विषयोंका अनुक्रम, पदपाठ वगैरह प्रकृतिपाठ, और जटामाला वगैरह विकृतिपाठ - तैत्तिरीयमें पांच प्रकारका वर्णक्रम -
२ ~~कठस~~ मैत्रायणी संहितामें मंत्र और ब्राह्मण भागोंका साथ ही पाठका क्रम -
३ कठ शाखामें स्वरसहित और स्वरानुपात पाठक्रम - अनुक्रम -
४ कपिष्ठल कठमें विशेष -

(४-४) (वस्तु - और विज्ञान) (२) संस्थादि वस्तुका ज्ञान - और उनकी

४ उनमें यज्ञीय देवताओंका विशेष तात्त्विक स्वरूपका समर्थन -
और जिन फलोंके लिये उस यज्ञका विधान किया गया है - उसका तात्त्विक विचार

मैत्रायणी और कठ कपिष्ठल कठ शाखाओंके भी - उसी प्रकार विचार -

५ ~~शुक्ल~~ काण्डिकेय – यजुः मूल यजुर्वेद संहिता – (वाङ्मय)
ऋषि देवता और छन्दः – पांच काण्डों के पांच ऋषि – प्रजापति – सोम, अग्नि, विश्वेदेवाः, स्वयम्भूः ... ये यजुर्मन्त्रों के ऋषि हैं।
उस अध्याय में जो ऋङ्मन्त्र आये हैं उनके ऋषि ऋग्वेद में दिखाये हुये ही ऋषि माने गये हैं, यह बात तो ब्राह्मणों में ही स्पष्ट है परन्तु काण्ड ऋषि का ग्रहण भी कर सकते हैं
(यज्ञादि विनियोग के अनुसार – अनुषंग के सिवाय पूरा मंत्रों का पाठ –)
पदपाठ वगैरह समान ही है।
२

(वस्तु-विज्ञान) यज्ञादि आम्नायों की
६ यज्ञपर- यज्ञीय तत्त्वों में ~~[illegible]~~ बोधायन की शास्त्रीय दृष्टि का विचार विनिमय,
पांच काण्डों के विभाग में उसका वैशिष्ट्य,

काण्डों के अध्ययन में पांच काण्ड व्रतों का अनुष्ठान का तात्त्विक भाव।

२ (शुक्ल यजुः वाङ्मय)
७ शुक्ल यजुर्वेद संहिता – काण्डिका विभाग – और उनकी संख्याओं की गणना।
तथा मन्त्रसंख्या – (१९००) (द्वे सहस्रे शते न्यूने) चरणव्यूह।
हस्तस्वरों का ज्ञान – और उन में हस्तमुद्रादि चिह्न का स्वरूप।
" न्यास, न्युब्ज, वगैरह –
याज्ञवल्क्य की दृष्टि से शुक्ल यजुर्वेद में ब्राह्मण भाग की असंकीर्णता
(द्वे सहस्रे शते न्यूने – मन्त्रे वाजसनेयके) (यह श्लोक याज्ञवल्क्य से प्राप्त है।)
बिना अनुषङ्ग के पूरा मारि युक्त मन्त्रों का पाठ की पद्धति।
(तात्त्विक विषय वस्तु – ज्ञान)
८ याज्ञवल्क्य की दृष्टि से इसमें तात्त्विक भाव का वैशिष्ट्य। यज्ञादि अनुष्ठान में सौलभ्य,
२
अर्थज्ञान में भी कुछ विशेष सहायता।

संहिता

४-९ सामवेद वाङ्मय (१)

९ सामवेद संहिता- अग्नि इन्द्र सोम वगैरह देवताओं के- गायत्री अनुष्टुप त्रिष्टुप वगैरह छन्दों के मंत्रों का अनुक्रम से योजना-
ऋग्वेद में और और ऋषि हैं। साम में और, इसका कारण उस साम गान का ऋषि यहां बताया गया है, काण्डों में मंत्रों की संख्या,

ओंकार मंत्र के अनेक प्रकारों का गान-

(४-१०) (वस्तु-विज्ञान) (२)

१० मंत्रोक्त देवताओं के उपगायन में विशिष्ट सम्बन्ध-
(१) सेतु गान- अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य-
(२) अग्निरस्मि जन्मना जातवेदाः- वैश्वामित्र का अपना साक्षात्कार कहां हुआ तत्साम गायत्री के इस वचन का अनुरूप.
"अजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम्" इस अन्तिम पद का तात्त्विक अर्थ में वैशिष्ट्य,
(३) इन्द्र क्रतुं न आभर० जीवा ज्योतिरशीमहि। यह इस मंत्र में जो तात्त्विक भाव है उसका विशिष्ट ज्ञान-

(४-११) अथर्ववेद ~~सं~~ वाङ्मय (१)

११- ये त्रिषप्ताः यह मेधाजनन सूक्त है- ४ मंत्र हैं, ऋषि अथर्वा, वाचस्पति देवता, अनुष्टुप छन्द है- मेधाजनन सूक्त है
"मणि- औदुम्बर- स्कम्भ, व्रात्य, वगैरह सूक्तों के ऋषि देवता छन्दः मंत्र संख्या,
"पृथिवी सूक्त- मं- ६३- काल- प्राण,-
ब्रह्मचारी- २४ मंत्र,

(४-१२) (वस्तु-विज्ञान-) (२)

१२- उच्छिष्ट आदि सूक्तों का वर्ण्य वस्तु परब्रह्म है।
"ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह उच्छिष्टात् तस्माज्जायन्त-"
इतर वेदों में- तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः हैं- यहां उच्छिष्टात् तस्माज्जायन्त हैं।
अतः यह एक ही वस्तु है,
पृथिवी सूक्त में- "सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।" इस पहिले मंत्र में इस पृथिवी का धारण सत्यादि रूप धर्मों का माना गया है-
यह ~~क्योंकि~~ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्- ~~[illegible]~~
देव इव सविता सत्यधर्मा- धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा वगैरह वचनों के योग से
सत्यादि धर्म ही पृथिवी का धारण करने वाले हैं, ऐसा सिद्ध होता है।

(४-१३) ब्राह्मणग्रन्थ-। वाङ्मय (१)

१३ ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण - ८ पंचिकाएं हैं। एक एक में ५-५ अध्याय हैं, ४० अध्याय। जिनके कुल हैं,
इनमें - खण्ड की संख्या अनुष्ठान की है। [illegible] है,
बीच बीच में यज्ञगाथायें भी हैं, इनमें स्वर नहीं है। इसका पाठ एकश्रुति से खण्डशः किया जाता है;
ऋग्वेद संहिता का आरम्भ अग्निमीळे पुरोहितं" इस मंत्र से अग्निदेव से हुआ है/
ऐ. ब्राह्मण में "अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः" इत्यादि देवों का क्रम कहा है। अर्थात्
इत्युपक्रम - इन लोगों के स्थान पर है। अतः अब इस अग्नि से ही प्रारम्भ किया गया है।
अग्नि इनके द्वारा ही सब सभी देवताओं के हविर्वाहक है। अग्निर्वै देवानां
अग्निं दूतं वृणीमहे - अग्निर्देवों का दूत है। अग्निर्देवों का दूत है,
ऐ. आरण्यक में ५ अध्याय हैं। उसी के अन्दर उपनिषद है। यह ब्राह्मण ग्रन्थ ही

१ अथ महाव्रतम्
२ [illegible]
३ [illegible] १४
४ अथैतस्य समाम्नाय
५ महाव्रतस्य पंच
[illegible]

(४-१४) ऐतरेय ब्राह्मण - वस्तु विधान - (२)

(वेदों का पहला भाष्य है)
पहली पंचिका में दीक्षणीय [illegible] का विधान है। + (जिसमें वेदमंत्रों का उपाख्यान किया गया है)
दूसरी पंचिका में सोम का विधान। यहाँ मैत्रावरुण एक ऋत्विक् [illegible] है। उनका तत्त्व और वैशिष्ट्य - [illegible], - तृतीय पंचिका में ज्योतिष्टोम ऋतु का विधान वर्णित है।
ऋतु देवताओं का आविर्भाव: [illegible]:-
४ पंचिका में - अग्निक्रतु का विधान - ५ - पंचिका के अन्त में ओंकार की उत्पत्ति और त्रयीविद्या ब्रह्म - [illegible]" इत्यादि [illegible] है।
७ पंचिका में हरिश्चन्द्र का यज्ञ - शुनःशेप का आख्यान - जो देवरात ऋषि को ऋग्वेद मंत्र दर्शन [illegible] दिखाया गया है" - [illegible])
८ - पंचिका के अन्त में "ब्रह्मणः परिमरः" इस खण्ड में विद्युत् वृष्टि चन्द्रमा आदित्य अग्नि वायु को ब्रह्मणः परिमर बताया गया है।
उपनिषद् आरण्यक और उपनिषद् में भी अनेक वैशिष्ट्य है।
ऐ. आरण्यक में ऐ. उपनिषद् लगा हुआ है, उसमें भी - आत्मा वा इदम् एक प्रसिद्ध है।
"वस्तुतः" [illegible]" यहाँ से ही उसका प्रारम्भ होता है - तीन अध्याय हैं।)

(४-१५) तै. कृ. य. ब्राह्मण - (वाङ्मय '१)

१५- इसमें ३ अष्टक हैं। मंत्र और ब्राह्मण भाग मिश्रित है - सस्वर पाठ है। परन्तु मंत्रों को भी पदपाठ नहीं है,
ब्राह्मण और अनुब्राह्मण ऐसा दो विभाग हैं।
"तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीत्" यह ब्राह्मण है। यह तै. संहिता में पठित है।
"प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः" यह अनुब्राह्मण है। यह तै. ब्राह्मणग्रंथ में पठित है।
[illegible]-

(४-१६) वस्तु तत्त्व - विधान - (२)

१६ इसमें पहले आख्यान - वेदि का निर्माण [illegible] है। उद्धन्यमानमस्या अमेध्यम्।
नक्षत्रों का विधान - कृत्तिका से प्रारंभ - अग्निर्नः पातु कृत्तिकाः।

तृतीय अष्टक में - [illegible] यह होता का मंत्र है - जो कि दर्शपूर्णमासादि यज्ञ में होता को पढ़ने का विधान है।

(४-१७) - कां॰ कृष्ण यजुर्वेद ब्रा॰ वड॰ ग्रन्थ-(१)

काण्डकेय कृष्णयजुर्वेद ब्राह्मणान - वड॰ ग्रन्थ-

१७ बौधायनादि काण्डानुक्रमणिका सूत्र के अनुसार इसको ग्रन्थ कहा है, (प्राजापत्य आदि काण्डों के अनुक्रम से है- संहिता के जैसे यहां भी पांच कांड हैं- जो उन मंत्रों का विनियोजक इसीप्रकार ग्रन्थ में ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद इन तीनों भागों का समावेश किया गया है। जैसे शतपथ ब्राह्मण में है।

मूलतः- तृतीयस्या मितो दिवि सोम आसीत- काण्डों में है।

प्रयुक्त इति:- यह -अनुब्राह्मण है यह ब्राह्मणग्रन्थ है इसे दोनों को प्राजापत्य यज्ञादि विधायक ही ब्राह्मण है। अर्थ का व्याख्यान जिसमें है वह अनुब्राह्मण है।

केचित- वैश्वदेवकाण्डे पञ्च उपनिषदः - नारायणो प- निषदुपनिषदोति-

(४-१८) - कां॰ कृष्णयजु॰ ब्रा॰ वस्तु विज्ञान-) (२)

१८ यहां ब्राह्मण और अनुब्राह्मण- करके दो विभाग हैं। जिसको वस्तु तत्व से अलग बताया गया है- जो यज्ञादि कर्मों का विधायक वाक्य है वह ब्राह्मण है- जो मंत्रार्थ का समर्थन करता है वह अनुब्राह्मण है। यह मूलतः वेद पाठ में ही अलग अलग नहीं पर- अलग अलग अध्यायक रूप से पठित है।

"इषे त्वेति शाखां छिनत्ति" यह ब्राह्मण भाग है।

"इषे त्वोर्जे त्वेत्याह इषमेवोर्जं यजमाने दधाति" यह अर्थ बोधक होने के कारण अनुब्राह्मण माना गया है। + दर्शपूर्णमास की इष्टि- याजमान- होता और पितृमेध यही पांच यहां पांच काण्डों में इस ब्राह्मण का विषय है- इसी तरह पांचों काण्डों का अलग अलग विषय निश्चित है। इसमें "इषे त्वोर्जे त्वा" इति पर्णशाखां छिनत्ति" यह ब्राह्मण का विषय है। "इषे त्वोर्जे त्वेत्याह- " इषमेवोर्जं यजमानो दधाति" इस प्रकार अर्थ का निर्वचन ही अनुब्राह्मण कहलाता है।

शिक्षाद्युपनिषद् ज्ञानविज्ञानवाक्य - नारायणो पनिषदः विशेषः

(४-१९) शतपथ-

शुक्लयजुः ब्रा॰- वड॰ ग्रन्थ- (१)

१९ इसमें ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद- इन तीनों का समावेश हुआ है, जिसमें -बृहदारण्यकोपनिषद- के रूप से अलग निकला गया है। उदाहरण- ईशावास्योपनिषद भी- मूलतः कुछ भाग- ब्राह्मण से लिया गया है। कुछ भाग संहिता का ही है, शुक्लयजुःसंहिता के-४० अन्तिम अध्याय है। यह "वेदोपनिषद" है, इसमें- वेद और उपनिषद दोनों मिले हुए हैं। "शाखा वेदोपनिषद" इस वचन का अनुरूप है। जैसे कि श्वेताश्वतर मंत्रोपनिषद माना गया है। "श्वेताश्वतराणां मंत्रोपनिषदि" ऐसे ईशोपनिषद को शरीरक भाष्य में बतलाया है। वह उपनिषद भी यजुर्वेद का ही है,

(४-२०) वस्तु तत्त्व विज्ञान-(२)

२० शतपथ ब्राह्मण के प्रारम्भ में दर्शपूर्णमास इष्टि के दीक्षाग्रहण मंत्र से प्रारंभ किया गया है- "अथ व्रतमुपैष्यन- " अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् इदमहम्- अनृतात्सत्यमुपैमि" यह समिच्छुति का मंत्र है, इस व्रत में अनत रूपी मनुष्यत्व से मुक्त होकर सत्य तरूपदेवत्व को पाना है- ऐसा भाव है, यही कृष्ण यजु में भी समान है। "अनृतात् सत्यमुपैमि मानुषाद् दैव्यमुपैमि दैवीं वाचं यच्छामि" इत्यादि। आगे सोमयाग और विकृति यज्ञ का विधान भी है,

(४-२१) साम-ब्रा.- वाङ्मय- (१)

२१ यहां ताण्ड्य ब्राह्मण प्रधान है। और -७ ब्राह्मण ग्रन्थ भी यहां हैं, जो कि बहुत विस्तृत रूप में हैं। इसकी अध्याय संख्या वगैरह इस प्रकार है।

(४-२२) ताण्ड्य ब्रा. वस्तु विज्ञान (२)

२२ सभी विकृति यज्ञों में गाने का विधान यहां है। उसमें भी अर्थ विशेष से जिस यज्ञ में जिस देवता का स्तोत्र करना होगा- उसी तत्त्व के मंत्रों का गायन भी विहित है,

(४-२३) अथर्व. ब्रा. वाङ्मय- (१)

२३ इन ब्राह्मणों में यज्ञीय विनियोग का कोई प्रकार नहीं है। बहुत सारे औषधि उपचारों का विधान है। कुछ आभिचारिक कर्मों का भी विधान उपाय रूप से बताया गया है। नहीं कि विधि के रूप से-
इसी में केन, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य- उपनिषदों का भी अन्तर्भाव होता है। जो कि दश उपनिषदों में प्रसिद्ध है। जिनका भाष्य भी अनेक आचार्यों के बनाए हुए मौजूद हैं। इसके अलावा "गणपति अथर्वशीर्ष उपनिषद्" नाम से प्रसिद्ध एक उपनिषद् भी है। जो कि छोटे छोटे बच्चे लोगों को अध्ययन के वास्ते पढ़ाया जाता है। जिसका हवन भी विहित है। हजारों जगह पर उसका अनुष्ठान प्रचलित है।

(४-२४) अथर्व. ब्रा. वस्तु तत्त्व विज्ञान (२)

२४ केन उपनिषद् वगैरह ग्रंथों में जो तत्त्व ज्ञान है वह अपार है। प्रवृत्ति निवृत्ति और निद्रा इन तीनों वृत्तियों के साथ- योग बताया गया है केनोपनिषद् में-
और ब्रह्मवादिनी हैमवती उमा देवी के मुख से ब्रह्म वस्तु का उपदेश इन्द्र को दिलाया गया है-
प्रश्नोपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि की कथा है- ~~जो कि~~ जहां - छः विद्यार्थी पिप्पलाद के पास ब्रह्म ज्ञान पाने के लिए गए थे- उन्होंने जो उपदेश दिया था-
मुण्डकोपनिषद् में परा और अपरा विद्या के उपदेश का मूल स्थान है। जिसके आधार पर यहां अद्वैत सिद्धान्त का स्थापन हुआ है। माण्डूक्य में ओंकार का रहस्य है। इसको गौडपाद आचार्य की कारिका है। शंकराचार्य वगैरह आचार्यों का भाष्य भी है-

इस नाम से प्रसिद्ध कोई ग्रन्थ नहीं है। यह सांकेतिक नाम है। इस संकेत से इस विषय का वाङ्मय जहाँ होगा उसे लेना है –

(४-२५) वेदोपनिषत् वाङ्मय (१)

२५ वेदोपनिषत् – यह वाक्य – तै. शिक्षोपनिषत् में प्रसिद्ध ही है "एषा वेदोपनिषत्" वेद माने मंत्र, उपनिषत् माने ब्राह्मण, इन दोनों के अर्थ से युक्त ही वेदोपनिषत् है, जैसे कि – ईशावास्योपनिषत् यह शुक्ल यजुर्वेद की संहिता में ४० अध्याय है, उसमें – कुछ भाग वेद का ही है। कुछ भाग (उत्तर) बृहदारण्यक उपनिषत् से लिया गया है। अतः यह वेदोपनिषत् मानी गयी है, मानने लायक है। उसी तरह – श्वेताश्वतर मंत्रोपनिषत् मानी गई है, "श्वेताश्वतराणां मंत्रोपनिषदि" ऐसे श्रीशंकराचार्य जी ने अपने शारीरक भाष्य में स्पष्ट [illegible] है। यह उपनिषत् भी यजुर्वेद का ही है और यजुर्वेद के मंत्रों से मिली हुई है – सामवेद में संहितोपनिषद् ब्राह्मण अथवा मंत्रब्राह्मण ऐसा नाम है होगा।

(हाशिये में: को – उपनिषद् ब्राह्मण)

४-२६ वेदोपनिषत् वस्तु विधान (२) तत्त्व का ग्रहण करना

२६ वेदोपनिषत् – इस नाम का कोई अलग ग्रन्थ नहीं है। इस अर्थ के संकेत से ही उस तत्त्वज्ञान के बारे में यह वेदोपनिषत् शब्द [illegible] स्वार्थ का बोधक है। इन दोनों उपनिषदों में तत्त्वज्ञान तो मशहूर अप्रसिद्ध है। लेकिन – वेदों में वेदमंत्रों में ही उपनिषत् का अध्यात्म तत्त्व ओतप्रोत भरा है, ऋग्वेद वगैरह चारों वेदों में – जहाँ वहाँ उपनिषत् तत्त्व है – कहीं कहीं मंत्रों में हैं कहीं कहीं पूरे सूक्तों में है।

ऋग्वेद में – दीर्घतमा के दर्शन में [illegible] "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" वगैरह मंत्रों में है।

१/+ "नासदासीत् नो सदासीत्" भाववृत्त सूक्त में सृष्टि का तत्त्व है।
ऋतं च सत्यं च – इस भाववृत्त सूक्त में भी है –
अथर्ववेद के उच्छिष्ट सूक्त, स्कम्भ सूक्त – ब्रात्य सूक्त वगैरह सूक्तों में परब्रह्म वस्तु का तत्त्वज्ञान अपार है बस वही वेदोपनिषत् मानने लायक है।

२७ "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्य का मूल प्रमाण भी वामदेव का मंत्रदर्शन "अहं मनुरभवं सूर्यश्च" ये ऋचायें बृहदारण्यक उपनिषत् में लिया गया है।

(हाशिये में: तत्त्ववेदकों –)
मधुवाता ऋतायते – इस सूक्त की मधु विद्या – बृ. उपनिषत् में तीन ऋङ्मंत्रों से बताई गई है – "तद्वां नरा – आथर्वणायाश्विना दधीचे..." ये तीन मंत्र हैं।

तरणिर्विश्वदर्शतः –

३ "नाव्यानस्य महिमा" "उदु त्यं" "तमसस्परि" – ये तीन सामवेद के मंत्र छान्दोग्य उपनिषत् में तत्त्वज्ञान का कीर्तन किया गया है। (देखिये [illegible])

"अपश्यं गोपां" – इस ऋग्मंत्र को (तत्त्वज्ञान) [illegible] शतपथ ब्रा. – इन तीनों वैदिक वाङ्मय में "प्रजापतिस्त्वो अध्यायमीयुः, [illegible] – बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रम् – [illegible]" वगैरह मंत्र – [illegible] आरण्यक में लिया गया है –

इन सभी वचनों से वेदोपनिषत् का लक्षण स्वतः सिद्ध ही है।

४-२७ ८ ६ वेदांग- वाङ्मय- १

शिक्षा--

27
28 शिक्षा और व्याकरण ये दो जो पाणिनि के बनाये हुए हैं। शिक्षा में स्वर वर्ण-मात्रा वगैरह वर्णों की उच्चार की शिक्षा आती है, यह अनुष्टुप् श्लोकों में बांधित है, (श्लोक सं)
और सभी वैदिक और संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं के मूलभूत इन चौसठ वर्णों का
त्रिषष्टिः चतुःषष्टिः आदेश किया है- त्रिषष्टिः चतुःषष्टिर्वा- वर्णाः शम्भुमते मताः, इत्यादि -
मूलतः यह तै. शिक्षोपनिषत् से लिया गया है- ॥ शीक्षां व्याख्यास्यामः वर्णः स्वरः मात्रा बलम्। साम सन्तानः इत्युक्तः शीक्षाध्यायः॥

(४-२८) २ वस्तु ज्ञान- (२)

28
29 इस शब्दशास्त्र के साथ लिपिशास्त्र का भी ग्रहण किया गया है।
व्याकरण के लेख — यथा पूर्वम्- ऋ. अभी की शिक्षा इस शिक्षा में भी है- जैसे कि अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः"
अनुस्वार के बाद में य वर्ण आने से उसी अनुस्वार के वर्ग के अनुनासिक वर्ण होता है। स्वयम्- सम्यक्- इस प्रकार का ज्ञान [illegible] होता है। यह लिपि से ही बता सकता है।
यह भी लिपि के लिपि चिह्न हैं। पर वस्तु का बोधक वर्ण है।
वर्णों का बोधक चिह्न है, जो कि आंख से प्रत्यक्ष देखने में आता है, यही वस्तु के ज्ञान में कारण है,
ये लिपि का उदाहरण है। २ वर्णों के उच्चार में "द्वियोष्ठौ तु विवृण्तोयाद् यत्नोकार वकारयोः- ओकार और वकार के उच्चारण में दोनों ओष्ठों को गोल बनाना, और ओकार वकार का उच्चार होता है। उसमें भी वकारस्य दंतोष्ठम्" वकार के लिए दांत और ओठ मिलाना चाहिये,

(४-२९) २ कल्पसूत्र- वाङ्मय- (१)

29 कल्पः- इस शास्त्र में कल्पसूत्र है। (वेद की अलग अलग- उसमें भी-) श्रौत कल्प और स्मार्त कल्प- | ये दो प्रकार प्रचलित हैं,
ऋग्. १ आश्वलायन श्रौतसूत्र, आश्व. गृह्य. सूत्र, आ. गृ. परिशिष्ट-
तै. यजु २ बौधायन- आपस्तम्ब- सत्याषाढीय, शुक्ल यजुः- कात्यायन श्रौत सूत्र, पारस्कर गृह्यसूत्र-
३ सामवेद- श्रौतसूत्र- गृह्यसूत्र- अथर्ववेद-- गृह्यसूत्र। वह स्मार्त कल्प- जो गृह्यसूत्र है-
जिसमें — जो श्रौत वैदिक यज्ञादि कर्मों की कल्पना की गई है वह श्रौत कल्प है, जिसमें उपनयनादि संस्कारों की कल्पना है
४- अथर्ववेद में -गृह्यसूत्र मात्र ही है- सोमादि वैदिक यज्ञों में अथर्व का स्थान नहीं,

(४-३०) २. सू (वस्तु के ज्ञान- (२) [illegible] किया जाता है और -

2. इस का तत्त्व है कल्प्यते इति कल्पः काम करने में फल देने में समर्थ होता है, कल्प्यते-) और कल्पयति इति कल्पना कराता है- इस प्रकार प्रयोग और प्रक्रिया शास्त्र का ज्ञान पाना और करना तथा दूसरों से कराना यही कल्पशास्त्र का मुख्य तत्त्व है
श्रौत कल्प में सात पाक संस्था। सात हविः संस्था। सात सोमसंस्था हैं। -और आग्रहायण.
इष्टि- आग्रहायण स्थालीपाक" यह गृह्य कल्प है- (स्मार्त में)
यह इस शास्त्र में अलग अलग रूप से प्रक्रिया से बताया गया है- उसमें भी देवता और के आहुति में विशेषता है। जैसे कि- ऋग्वेद में- इन्द्राग्नी- अग्नीषोमौ- द्यावापृथिवी- ये तीन
द्विदैवत्य के उद्देश से हवि का करने का विधान है- उसमें भी तत्त्व है,
॥ सजूः ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरिन्द्राग्निभ्यां स्वाहा- इत्यादि- यह दिग्दर्शन मात्र ही है।

पृ० ९

४-२२-

(१) व्याकरण– वाङ्मय–(१) इसका प्रारम्भ है–

३१ व्याकरणम्– यह अष्टाध्यायी सूत्र नामसे प्रसिद्ध है– "वृद्धिरादैच्" इस सूत्रसे
यह– मूलतः "अइउण् ऋलृक्" इस अक्षरसमाम्नायके १४ चौदह सूत्रसे लिखा गया है,
यह पाणिनि मुनिका बनाया हुआ है। इन सूत्रोंमें– अण्, इण्, अच्, अट्, अल्, हल् वगैरह–
इसको वररुचिकी वृत्ति है– पतञ्जलिका महाभाष्य भी है। यह सूत्रोंके अनुक्रमसे बनाया
हुआ है।) (* अनेक संकेतके ~~शब्द~~ शब्द प्रसिद्ध है– जो इसको प्रत्याहार कहते हैं। ~~इस प्रकार~~)।
प्रकरण विभागसे बना हुआ है "वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी" उसमें–
पुल्लिंग स्त्रीलिंग नपुंसकलिंग– [समास] कारक, तद्धित– धातुपाठ– १० लकार सहित, स्वरवैदिकी
प्रक्रिया– वगैरह अनेक प्रकरण हैं,
+ इन प्रत्याहारोंसे उन दो वर्णोंके बीचके सभी वर्णोंके साथ– आदिवर्णका भी ग्रहण किया जाता है।

(२) (४-३२) — (वस्तु ज्ञान)(२) मुख्य उद्देश्य है:

३२ वाचक और वाच्यार्थका सम्बन्ध और यथार्थ ज्ञान– यही व्याकरणका मूलतत्त्व है,
बिना धातुके अर्थ ज्ञानसे नामपदका स्वरूप ज्ञान नहीं हो सकता है,
उसमें भी नामपदमें तीन लिंग– पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग, एकवचन, द्विवचन और
बहुवचन ये तीन वचन हैं। प्रथमादि सात विभक्तियोंका अर्थ है और एक संबोधन,
सर्वनामपद, उपसर्ग– अव्यय– यह अव्यय अनेक अर्थोंमें आता है– जिसका रूप बदलता
नहीं– लिंग, वचन, वगैरह सभी स्थानोंमें सभी कालोंमें सभी क्रियाओंमें भी विकार नहीं
होता है– अव्ययं विभक्ति समीप ~~स~~ समृद्धि– साकल्यान्तवचनेषु। इत्यादि,
क्रियापदमें भी– परोक्ष प्रत्यक्ष और अपरोक्ष वस्तुओंके ज्ञानके लिए क्रियाका प्रयोग
किया गया है, जैसे– वह जाता है– यह परोक्ष है। तू जाता है। यह प्रत्यक्ष है। मैं जाता हूं–
यह अपरोक्ष है। इसमें भूत वर्तमान और भविष्य कालके योगसे क्रियापदका स्वरूप
बदलता है– जिसके रूपसे उन कालोंका ज्ञान हो सकता है।

(३) (४-३३) निरुक्त– वाङ्मय–(१) निघण्टु कोषमें बताया गया है।

३३– यह वेद ~~...~~ मंत्रोंके अन्दर जो शब्द [रूप] ~~हैं~~ हैं, नामपद हैं– उन शब्दोंका अर्थ निर्वचन
करता है। यह– निरुक्त [अन्य] नामका ग्रन्थ है
*+ "गौः ग्मा ज्मा क्ष्मा" से प्रारंभ हुआ है।
यह व्याकरणसे संबद्ध है– "चत्वारि वाक् परिमिता पदानि" वाणीके * चार पद हैं, नाम आख्यात उपसर्ग
निपात ~~...~~ हैं, [४] उन पदोंको इस ~~निरुक्त~~के निघण्टुमें बताये ~~हैं~~, गये हैं– नाम = आख्यात = क्रियापद,
उपसर्ग– प्रत्यय– इत्यादि निपात ~~...~~ अव्यय–
त्रिविधा हि तु तत्र

(४) ४-३४ वस्तु तत्त्व ज्ञान (२) [अन्य वेद मंत्रोंके] ~~...~~ तत्त्वभेदसे इस प्रकारके अर्थ बताये गये हैं–

३४ इन निरुक्तके बिना– वेद मंत्रोंका अर्थ ज्ञान होना असम्भव ही है। इसमें–
शब्दोंका निर्वचन– अर्थका निर्वचन, उसमें भी– ~~...~~ भुवन– और देवताओंका निर्वचन–
उसमें ~~...~~ ओंका स्वरूप निर्वचन– वगैरह– अनेक तत्त्वोंका समावेश है। है–
~~तीन~~ पृथिवी– अन्तरिक्ष– और द्युलोक इन तीन भुवनोंके विभागसे उनको [तीन] देवताएं अग्नि वायु सूर्य बताये गये
और उनको [सभी] किरणरूपी देवता ~~...~~ ओंका भी निर्वचन किया गया है,
इसके अलावा– ~~अनेक~~ ऋग्वेदके अनेक मंत्रोंका अर्थ स्पष्ट नहीं है, और कुछ वेदके विशिष्ट
धातुओंका अर्थ भी [नैगमकांडमें] बताया गया है– जो कि– व्याकरणमें नहीं मिलता है, "अर्णव्याकरोतिः परिचरणकर्मा,
दुवस्यतिः परिचरणकर्मा, आविवासतिः परिचरणकर्मा, इत्यादि —

छन्दः- वाङ्मय- (१)

३५ वेदमंत्रोके ~~[illegible]~~ योगमे जो छन्दो निबन्धन है- वह छन्द माना गया है।
"मयरसतजभनलगसंमितं" ऐसे इन आठ अक्षरोसे आठ गणोंका. और
लघु तथा गुरु इन वर्णों का सम्बन्ध बताया गया है।
यह गायत्री छन्दसे प्रारम्भ होता है। १ एक अक्षरसे ~~[illegible]~~ युजुरिन्द्रम्
यजुश्छन्दका प्रारम्भ होता है। "छन्दः गायत्री देवेकम्" - वह यजु छन्द सेकडों अक्षरों
का भी होता है- उनको उत्कृति [illegible] भी है।
ऋग्वेदके गायत्री वगैरह छन्द - ८ आठ अक्षरों का एक पद- तीन पादोंसे गायत्री बनी है।
उसी तरह चार पादों से (८ अक्षरोंके) अनुष्टुप्- ११ त्रिष्टुप्- १२ जगती बनती है।
ये सात छन्द प्रसिद्ध हैं- गायत्री-उष्णिक् अनुष्टुप्- बृहती- पंक्ति- त्रिष्टुप् जगती-
इनके देवता ये भी हैं। अग्नि- सविता- सोम- बृहस्पति- मित्रावरुणौ, इन्द्र विश्वेदेवाः-
अतिजगती- वगैरह- अतिछन्द भी है।

४-३६ वस्तु ज्ञान- (२)

३६- इस छन्दका तत्त्वज्ञान बहुत गूढ है- अपार और अगाध भी है। इसका सामर्थ्य
कल्पनातीत है- जिस छन्दके योगसे- भगवान भी छन्दः पुरुष बना है। वाणी भी वेदरूप बनी है।
प्रहस्त- गद्य- और मंत्र और स्तुति नामसे प्रसिद्ध हुई है-
यह तत्त्व दीर्घतमाने अपने मंत्र दर्शनमें सुनाया है। "यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं-"
जो इस तत्त्वको जानते होवे अमृतत्वको प्राप्त हुए हैं-
इस मंत्रका व्याख्यान- ऋग्वेदके ब्राह्मणोंमें है--

(४-३७) ज्योतिष- २ वाङ्मय- (१)

३७ ज्योतिष- यह कालचक्रसे सम्बद्ध है। वह संवत्सर और युगरूप कालसे युक्त है।
वह संवत्सरचक्र पांच अंगों से ~~[illegible]~~ सिद्ध है। "दिन ऋतु अयन मास पक्ष" ये संवत्सर
चक्रके पांच अंग हैं। यह यज्ञके योग्य काल ज्ञानके लिये साधन है। सर्प को सिर [illegible] जैसे
ज्योतिष सभी वेदांगों में ~~के~~ शिरपर है, यज्ञके लिये वेद प्रवृत्त हुए हैं। कालके अनुरूपसे
यज्ञ विहित है। अतः इस कालका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।
यह इस ग्रन्थ~~का~~ लगध ~~का~~ मुनिका बनाया हुआ है, इसमें- अध्याय और श्लोक (इतने भी) हैं-
इसमें आर्च ज्योतिष और याजुष ज्योतिष करके दो ग्रन्थ हैं, इसका सोमाकर भाष्य है।

(४-३८) वस्तु ज्ञान- (२)

३८. ज्योतिषका ज्ञान भी बहुत गूढ है। यह काल सभी भूत और भुवनों का नियामक रूप
माना गया है। [illegible] यह- विश्वरूप- आदित्य से सम्बद्ध है। इस कालको
विश्वके उत्पत्तिको — विभाजक सूर्य ही है- और विद्युद्रूप तथा अग्निरूप ज्योति भी इसीका है।
शक्तिसे युक्त — इसमें नक्षत्रचक्रका भी एक अंग है- वह- २७ नक्षत्र से युक्त है। (उस का देवता अग्नि है अतः) कृत्तिका नक्षत्रमें अग्निका
इसको भी — ~~संवत्सर~~ आधान विहित है- अश्विनी भी- आरम्भ इतर भागमें है यह दोनों नक्षत्र भी-
यही कालरूपी है- — शरद् ऋतुमें प्रारम्भ होते हैं। अतः वहीं शरद संवत्सरका भी नाम पड़ा है।
संवत्सरचक्रमें- तीन सन्धियाँ हैं। १२ [illegible] ३६० [illegible] हैं। ७२० अहोरात्र हैं।
अथर्ववेदमें कालसूक्त है- ~~[illegible]~~ [illegible] भी आये- सप्त ऋषियों भी जो अर्थ [illegible] माना गया है।
वह देवता [illegible] माना गया है [illegible] सालमें एकबार आता है- यह वेदोंमें बहुत जगहपर है।

इस पराविद्या का स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है, वेदोपनिषद् के मध्य में संकेतित होने के कारण।
४-३९-   १९ उस लक्षण के जहां जहां पराविद्या होगी वे सब लिये जा सकते हैं —
परा विद्या-   वाङ्मय (१)

३९ अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते — जिससे वह पर ब्रह्म अक्षर वस्तु पाया जाता है।
यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च। विश्वम् —
यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः — ऐसे अनेक वेदमन्त्र
और उपनिषद् भी प्रसिद्ध हैं। यहां एक ही उपनिषद् में नहीं बल्कि सब दूर हैं।
उन सभी वचनों का ग्रहण यया विद्यया — इस शब्द से हो सकते हैं लिया गया है,
इस नाम से भी प्रसिद्ध कोई अलग ~~ग्रन्थ~~ ग्रन्थ नहीं है। यह संकेत के नाम होने के कारण
इस अर्थ का मंत्र या ब्राह्मण वाक्य होगा वे सब ही परा विद्या के अन्दर ले सकते हैं।

(४-४०) वस्तु-तत्त्व विज्ञान (२) भिन्न वह है। वह पराविद्या है-
४० पराविद्या — इस नाम का कोई तो अलग नहीं है। जिस विद्या से वह पर वस्तु-
यह ऊर्णनाभि का दृष्टान्त बहुत विचित्र ज्ञान का है। जो इस दृष्टान्त से उस परोक्ष
वस्तु को बताया है — अपने अन्दर से छोड़ना — फिर उसी को अपने अन्दर खींच लेना।
पृथिवी में वनस्पतियां पैदा होती हैं, जैसे आदमी के शरीर में नख केश रोम पैदा होते हैं
और बढ़ते हैं। इसी तरह — वह ब्रह्म वस्तु है। *
यह ब्रह्म शब्द के व्युत्पत्ति के समय बृंहि धातु के अर्थ से ऊपर शंकराचार्य जी ने
बताया है। (अस्ति तावद् ब्रह्म. बृंहतेर्धातोरर्थानुगमात् —
महर्षि विश्वामित्र के मंत्र दर्शन से सिद्ध है- "जन्मन् जन्मन् निहितो जातवेदाः॥
जहां जहां अंकुर का फुरता है और बढ़ता है वहां वहां जातवेदस् सर्वत्र अग्नि है,

२ ——

वेदों को- षड्
(~~४-४०~~) उपाङ्ग दर्शन शास्त्र,
(४-४१)   २ —— वाङ्मय (१)   क्रियायाः प्रवर्तकं वचनम् १।१।१-२

४१ (१) धर्म मीमांसा-शास्त्र — यह जैमिनि आचार्य का बनाया हुआ है-(धर्मः चोदनेति —
इस में १२ अध्याय हैं। १००० अधिकरण हैं।) अथातो धर्मजिज्ञासा, चोदनालक्षणोऽर्थो
शबरस्वामी का भाष्य भी है, कुमारिल भट्ट की तन्त्रवार्तिक ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है।
पांचवा सूत्र — "औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुप
लब्धे तत् प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्" औत्पत्तिक नित्य स्वभाव: (शा.भा)
शब्द के आदि भाव को ही शब्द और अर्थों का सम्बन्ध नित्य सिद्ध है, उसका उपदेश होता है,
अनुपलब्ध- परोक्ष अर्थ में वह प्रमाण है बादरायण का भी। क्योंकि वह इतर अपेक्षा के बिना
(वेद)
(४-४२) वस्तु ज्ञान - ~~वस्तु न~~ (२) अर्थ ~~ज्ञान~~ का बोधक रहता है। इत्यादि —
२ ——
(१)
४२ इन अधिकरणों में वेदों के प्रमाणों की विचार चर्चा विमर्श करके धर्म का निर्णय
किया गया है, यहां में जो जो पदार्थ-विषय आते हैं उनमें शंका पैदा होती है, उस संदेह को
दूर करने के लिये यह मीमांसा निर्णय बहुत उपयुक्त है।
जैसे कि छोटी सी बात है — "वेदं कृत्वा वेदिं करोति" वेद को करके वेदि करता है करना चाहिये
वेद यह यहां एक दर्भमुष्टि का बोधक पद है — न कि वेद का है,
ऐसे ही अनेक जगह पर है और ब्राह्मणों का
अनुसार और युक्ति काल ~~क्रम~~ बताया गया है, ऐसे हजारों विषयों की चर्चा और निर्णय-
२ —— इसमें है।

(४-४३)

(2) ब्रह्ममीमांसा -- १२ वाङ्मय (१)

४३ ब्रह्मसूत्र — (इसमें ४ अध्याय हैं हरएक अध्यायमें ४-४ पाद हैं।) सूत्रोंकी संख्या है।
प्रारम्भ — अथातो ब्रह्मजिज्ञासा जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात् तत्तु समन्वयात्
इन ४ सूत्रोंमें चार अधिकरण की रचना की गई है।
बाद ईक्षतेर्नाशब्दम् — (५) अधिकरण, (६) आनन्दमयोऽभ्यासात् — (७) ज्योतिश्चरणाभिधानात्
(८) आकाशस्तल्लिङ्गात् (९) अत एव प्राणः (१०)
( ) प्राणस्तथानुगमात् ऐसे बारह अधिकरण की कल्पना की गई है। बाद — अन्तर्यामी, दहर, अन्तस्तद्धर्मो वैश्वानर — वगैरह अस्पष्ट लिंगों के शब्दों के अर्थ निर्णय के लिये अनेक अधिकरणों की रचना की गई है, इत्यादि — अध्यायोंमें भी अलग अलग विषयपर विचार किया गया है। उसीके अनुसार सूत्र रचना भी है। — ध्यान और फल वगैरह भी हैं।

(2) (४-४४) वस्तु तत्त्व विज्ञान ॥ (2)

४४ इस विश्वके सृष्टिस्थिति उपसंहार इन तीनों विषयोंके मूल कारणभूत एक सत्य वस्तु ही ब्रह्म है, ऐसे परोक्ष वस्तुकी सत्तामें जो जो आक्षेप आता है आ सकता है — उनकी भी विषयोंकी चर्चा — विचार विमर्श और निर्णय भी इसी शास्त्रमें किया गया है।
~~इसका~~ वह भी मूलतः उपनिषदोंके वचनोंमें, ~~वेद उपनिषद~~ अनुपनिषदों का मूल प्रमाण वेदमंत्र ही है।
और अपना अनुभव भी प्रधान प्रमाण माना गया है। वस्तुतः यह अनुभव शास्त्र ही है,
न केवल शब्द मात्रसे सिद्ध हो सकता है —
उसीको अवगति — और अवबोधनार्थसे शंकराचार्यजीने बताया है।
~~आवृ~~ आवृत्तिरसकृदुपदेशात् तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यके अर्थको पुनः पुनः आवृत्तिका उपदेश है — उस आवृत्तिसे "अनावृत्ति ~~…~~ शब्दात्" सिद्ध होती है।

(3) (४-४५) योगदर्शन — वाङ्मय (१)

४५ यह पतञ्जलि मुनिका बनाया हुआ है — उसके १ अध्याय हैं — ४ पाद हैं —
(~~अभ्यास और वैराग्यके द्वारा चित्तवृत्तिके निरोधसे~~ — आत्मस्वरूपस्थितिका उपदेश है।
अभ्यासयोग, ईश्वरप्रणिधान, ~~अष्टाङ्गयोग~~ — इत्यादि साधनोंका उपदेश किया गया है।
प्रारंभ — "अथ योगानुशासनम् योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ~~तदा द्रष्टुः~~ अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ईश्वरप्रणिधानाद्वा, यथाभिमतध्यानाद्वा, योगाङ्गानुष्ठानाद् —
ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः देशबन्धश्चित्तस्य धारणा, तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्, तदेवार्थ
मात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः त्रयमेकत्र संयमः —
+ "अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्)

(3) (४-४६) २ वस्तु तत्त्व ज्ञान (२)

४६ इसमें ~~आत्म~~ अपनी स्वरूपस्थितिके लिए ~~…~~ चित्तवृत्ति ही मूल कारण है "
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः — इसलिए अपनी चित्तवृत्तियोंको स्थिर करना
उसीको स्थिरता लाना ही बड़ा फलकारी होगा यही पतञ्जलिका मुख्य उद्देश है।
उसीके लिए अभ्यास और वैराग्यके सहयोगसे चित्तवृत्तिका निरोध करना — उसीसे
द्रष्टा जो अन्तर्यामी पुरुष है। उसके स्वरूपमें अवस्थानम् — प्रतिष्ठा सिद्ध होती है —
इसी प्रकार आगेभी ~~…~~ सम्प्रज्ञात समाधि … उपदेश किया गया है,
और धारणा ध्यान समाधि — उनके योगसे संयमयोग उससे सम्प्रज्ञात समाधि और
असंप्रज्ञात समाधि भी सिद्ध होती है।

(४-४७) १३

सांख्यदर्शन · वाङ्मय · (१)

(४)

४७ सांख्य शास्त्र. यह कपिलमुनिका ग्रन्थ है, यह सूत्ररूप है,
सांख्यकारिका भी है, वह आर्यावृत्तबद्ध श्लोकरूप है।
"दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ। दृष्टे साऽपार्था चेत्
दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः

(४) ४-४८ वस्तुतत्त्वज्ञान - (२)

४८ इसमें पुरुष और प्रकृतिका सिद्धान्त बताया गया है।
अचेतन प्रकृति - चेतन पुरुष है। चेतनरूप पुरुषके अधिष्ठानसे अचेतन प्रकृतिकी
प्रवृत्ति होती है - पुरुष केवल तटस्थ ही है।
यह उपनिषद् से ही लिया गया है। ईश्वरादिकी कल्पना - उदाहरणार्थं विविध -

अभ्यासप्रक्रियायां. यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञः - पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः॥
इत्यादि -

(५) (४-४९) वैशेषिकदर्शन - २ वाङ्मय (१)

४९ - कणाद सूत्र ॥ अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः। यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः
~~यह सूत्र बहुत प्रसिद्ध है~~ - स धर्मः तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् इति -
इसके बाद ही धर्मका व्याख्यान करते हैं। जिससे अभ्युदय और मानें अभिवृद्धि और
निःश्रेयस मानें मोक्षकी सिद्धि होती है, वह धर्म है। उस धर्मका उपदेश करनेके कारण
वेदका प्रामाण्य है। तद्वचनाद् · यहांपर - आम्नायस्य वेदका जो प्रामाण्य होता है।
क्योंकि धर्मोपदेशके कारण वेदोंका प्रामाण्य. वेदसे उपदिष्ट होनेके कारण धर्मका प्रामाण्य -

(५) (४-५०) २ वस्तुतत्त्वज्ञान २

५० यहांपर यह तत्त्व सिद्ध है इस दुनियामें सबको सुखसंपत्तिरूप अभ्युदय होता है,
और मोक्ष भी होता है, यही प्रथम और परमार्थ लक्षण है,
इस लिए वेदोक्त धर्मका पालन करनेके लिए वेदका प्रादुर्भाव हुआ है, इसीलिए वेदको प्रथम
प्रमाण माना गया है,
यहां और सप्तपदार्थी नामक ग्रन्थ है - जोकि इस दर्शनमें मूल वस्तु है -
द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय अभावाः सप्त पदार्थाः - ये सप्त पदार्थ दिखलाए गए हैं। इसके साथ -
न्यायके सिद्धान्तमें आत्मवादी - १६ पदार्थ माना गया है जिनके सात पदार्थ -
साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः ·
इनके अन्दर जो साधर्म्य मानें ~~…~~ समानधर्म और विरुद्ध धर्म हैं - उनके द्वारा से उनके
तत्त्वके ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

(४-५१) ~~१३~~ १४

५ न्यायदर्शन- वाङ्मय-(१)

(६) सूत्र-

४६. ५१ न्याय- यह गौतममुनिका है। "प्रमाणप्रमेय..

यह सोलह पदार्थवादी है ये- प्रत्यक्ष अनुमान- उपमान और शब्द ऐसे ४ प्रमाण मानते हैं, केवल शब्द को प्रमाण मानते हैं। वेद को प्रमाण मानते हैं। परन्तु यह आस्तिक शास्त्र में स्वीकृत है-

(५) (४-५२) वस्तुतत्त्वज्ञान- (२)

५२ इन सभी शास्त्रों में आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति से- मोक्ष ही उद्देश है-
उसी के लिए सभी साधनों का उपदेश किया गया है।
दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः न्या. सू.

२—

सिद्धान्तदर्शन- यह भी दर्शनशास्त्र में ही अन्तर्गत माना गया है।
"सर्वत्र अनास्थाः- " इन बाह्य विषय और वस्तु में भी दूर अनाश्वास विश्वास मत करो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन- यहां कहा है-
अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन- न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः इत्यादि.

२—

५३ (४-५३) धर्मशास्त्र वाङ्मय (१) गौतम बौधायन

मन्वत्रिविष्णुहारीत इत्यादि २० ऋषियों का ग्रन्थ- और भी इतना कर २८ स्मृतियाँ
तत्त्वज्ञान के लिए गीता स्मृति भी इसी के अन्दर आती है-

२—

षड्धर्मशास्त्र चौदह विद्याओं के अन्दर आया है "पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः वेदाः स्थानानि लिखे हैं.

२—

२—

(४-५४) तत्त्वज्ञान-) (२) विवाह.

५४ आहारविहार से प्रारम्भ करके सभी निकृष्ट व्यवहारों में तथा उपनयन गर्भाधान सभी संस्कारों में इस धर्मशास्त्र के ज्ञान की आवश्यकता है, आश्रम
उसी तरह आचार प्रयोग मरन के बाद भी जो संस्कार है- और विवाह के उद्देश से समर्पण करने श्राद्ध वगैरह भी इसी धर्मशास्त्र के अन्दर कहा गया है।

२.

गीताधर्म- ज्ञान उपासना (भक्ति) और कर्म- इन तीनों का योग तीनों का समन्वय से समर्थित है। उस समन्वय का वर्णन भी इस धर्मशास्त्र रूप स्मृति के अन्दर ही लिया गया है इसीलिए ब्राह्मण ग्रन्थों में स्मृतियों का उचित स्थान स्मृतियों को रूप से इस स्मृति का उल्लेख किया गया है, यह स्मृतियों ने वेद प्रमाण बाद ही मानी गई है-

२—

४-९५-

(१) उपवेद- ~~९४~~-१५ वाङ्-मय-(१)

५५ ऋग्वेद का उपवेद- आयुर्वेद है।

चरक सुश्रुत वाग्भट वगैरह आचार्यों के बनाये हुए अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

५ ~~अष्टांग विज्ञान~~ व अष्टांग संहिता केवल गद्य में है। सुश्रुत श्लोकों में है।

अष्टांगहृदय में- ८ प्रकरणों का विभाग है। श्लोक प्रायः है।

इसमें चिकित्सा वगैरह कहा गया है।

माधव निदान इसमें केवल रोगों की परीक्षा करने की विधि और लक्षणों को बताया गया है- इसमें प्रकरण और श्लोक हैं।

(४-९६) २

(१) वस्तु ज्ञान- (२)

५६ इसमें सबसे प्रधान है- सभी लोगों को सुख मिलना ही है, वह सुख बिना धर्म के नहीं मिल सकता है- अतः सुख चाहने वालों को उचित है कि वह धर्म पालन करें- इसीसे- धर्म के संबंध से यह आयुर्वेद भी वेद का उपवेद में मानने लायक बन गया है।

२

नैसर्गिक चिकित्सा- भौतिक- दैविक, आध्यात्मिक चिकित्सा - कायिक वाचिक मानसिक प्राण चिकित्सा, मांत्रिक चिकित्सा वगैरह - यह ऋग्वेद मंत्रों में ही छिपी हुई है। चिकित्सा के रूप में उपवेद माना गया है।-

(२) (४-९७- २ धनुर्वेद- वाङ्-मय-(१)

५७- ऋग्वेद का उपवेद धनुर्वेद है - इसका ग्रन्थ अलग है। परन्तु यजुर्वेद में हजारों जगह पर- इस विद्या का ज्ञान का दिखलाई देता है।

"तं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तं वो जम्भे दध्मः" इत्यादि -

यह सभी धनुर्वेद का ही २ स्मरण है।

(४-९८) २ — (वस्तु ज्ञान-) (२)

(३)

५८ यहां पर- इन वचनों में जो शस्त्र तेज का तत्त्व दिखता है, वह भौतिक भी हो सकता है आधिदैविक, और आध्यात्मिक भी, सभी साधनों में वेद मंत्रों का आश्रय लेना ही पड़ेगा।

यह सामवेद का ४-५९ वाङ्मय-(१)

५९ (३) गान्धर्व वेद उपवेद है माना गया है, इसमें ऋग्वेद मंत्रों को अनेक स्वरों से गान किया जाता है। "तस्मादृच्यध्यूढं साम गीयते" (छां.उ.) गीतिषु सामाख्या (जै.सू.) इनमें स्वर और छन्दों के भेद से गायन भेद भी है, और यज्ञादि विनियोग में प्रातःसवन माध्यन्दिन सवन, सायं सवन" इन कालों का सम्बन्ध भी है, और उन सवनों के भेद से गान का भी भेद होता है, वैराज, शाक्वर, रैवत, राजन, बृहत् वगैरह साम[साम] का भेद है। उद्गीथ प्रतिहार- निधन, वषट्कार वगैरह- सात भेद भी साम गान के अलग भेद हैं, इसी सामगान से ही- षड्ज ऋषभ गान्धार मध्यम पंचम धैवत निषाद- इन स्वरों का आविर्भाव हुआ। जिससे लौकिक संगीत शास्त्र का आविष्कार हुआ है, और उनकी समय- और देवता भी अलग अलग ही है,

(३) सामवेद

६० गान्धर्व वेद- उपवेद- ४-६०- वस्तु तत्त्व ज्ञान(२)

तै. भृगुवल्ली बताते हैं कि- [illegible] "एतत्साम गायन्नास्ते- इत्यादि- जो इस प्रकार [वह] पुरुष अन्नमयादि आनन्दमय तक के पांच कोशों को अतिक्रमण करके इस लोक में विचरता हुआ यह साम का गान करता रहता है- अहमन्नं अहमन्नादः अहं श्लोककृत- मैं भोग्य रूप अन्न हूं, भोक्ता भी मैं हूं, वेद मंत्रों का कर्ता भी मैं हूं,-"अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य"। सत्य वस्तु से पहले पैदा हुआ पुरुष मैं हूं, और देवताओं से भी पहले अमृतत्त्व का मूल स्थान रूप से मैं ही हूं। "अहमन्नं- मैं अन्न हूं अन्न को खाने वाले को मैं खाता हूं" मैं इस लोक के भुवन में आकाश में ज्योति की तरह मैं प्रकाश और प्रतिभा हूं- जो ऐसा जानेगा वह भी ऐसा ही होगा- यही साम का तत्त्व है, इत्यादि।

(देवताओं से भी पहले)

(४) २- ४-६१- वाङ्मय-(१)

६१ अथर्व वेद- आगम-मंत्र शास्त्र- देवताओं के ~~[illegible]~~ स्फटिक- पत्थर, सोना चान्दी ताम्बा वगैरह धातु-, मट्टी- और लकड़ी वगैरह की मूर्ति में [आदि शास्त्रों में भी] प्राण प्रतिष्ठा का [पूजा वगैरह का] विधान- इस आगम और तंत्र शास्त्र के ग्रन्थ में बताया गया है- वैष्णव वातुलागम- मेरु तन्त्र वगैरह नामों से प्रसिद्ध हैं। उसमें होम हवन [पूजा] वगैरह का विधान भी है, उसमें भी अनेक प्रकार की [दश] शक्ति देवताओं की हैं। अनेक गणपति वगैरह पुरुष देवताओं के भी है ग्रन्थ हैं, (जिसमें मंत्र यंत्र-तन्त्र इन तीनों का समावेश किया गया है।)

(४) ४-६२- वस्तु तत्त्व ज्ञान-(२)

६२ आगम तंत्र शास्त्र, [देवताओं के] मूर्ति और यंत्रों में प्राण प्रतिष्ठा के बिना- उन देवताओं में सिद्ध नहीं होता है, देवता सान्निध्य भी नहीं रहता है, तब कि इई पूजा वगैरह केवल पत्थर की ही होगी, न देवताओं की पूजा होगी। उसमें सामर्थ्य नहीं है- अर्थात् शास्त्रोक्त फल देने में ~~[illegible]~~ और समर्थ नहीं हो सकते हैं, उनसे भक्त लोगों को श्रद्धा उनमें नहीं रहेगी और अश्रद्धा भी बढ़ती जाएगी। यह प्रत्यक्ष देखने में आता है सबों के अनुभव से सिद्ध भी है। अनुवीतेयुनरस्माकु- यह प्राण प्रतिष्ठा भी- अपने ही प्राण से करनी पड़ेगी- मम प्राणा इह प्राणाः मम जीव इह स्थितः- सर्वे इन्द्रियाणि इह यथा सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।"- मेरा प्राण मेरा जीव- मेरे इन्द्रिय भी [चिरकाल] मिलके इस मूर्ति में स्थिर रहें-

जिसमें "मंत्र यन्त्र और तंत्र" इन तीनों तत्त्वों का समावेश किया गया है, जो वाच्य और वाचक तत्त्व से मिला हुआ है। वह मंत्र है। वह ज्ञान प्रधान है, जो सांकेतिक रेखादि से युक्त है वह यंत्र है, वह भावना प्रधान है, जो इन दोनों के योग से किया जाता है वह तंत्र है। वह क्रिया प्रधान है- यह सभी इस तत्त्व ज्ञान में अंतर्गत है-

४-६३- वाङ्मय (१)

६३ इतिहासपुराण — युगान्तर में जो बातें बीत गई होंगी, उन विषयों को रूपककथा के रूप से समझाने के लिए जो बनाया गया है वही इतिहास माना गया है।
जैसे महाभारतादि ग्रन्थों में अनेक बातें सुनने में और सुनाने में आती हैं।
प्राय: इनमें लिट् लकार का ही प्रयोग किया जाता है, जैसे कि- गीता में - अर्जुन उवाच।
भगवान् उवाच" वगैरह प्रयोग है- अर्जुन ने ऐसा कहा था रे- ऐसे सुनने में आता है। (परोक्ष लिट्)
"इति ह आस- ऐसा था, यह ऐतिह्य प्रमाण माना गया है। "श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यम् अनुमान-
श्चतुष्टयम् (तै० आ०) अर्थात् प्रत्यक्ष और ऐतिह्य ये तीन प्रमाण हैं। अनुमान ये ही हैं-
इन इतिहास पुराणों से जनता के हृदय में वेद का गौरव बढ़ाना ही इसका मुख्य उद्देश है।
"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।" -

(४-६४) वस्तुतत्त्वज्ञान- (२)

६४ इतिहासपुराण — वेद और उपनिषदों में जो तत्त्वज्ञान है, उसी का यह रूपक दृष्टि से बताना है, जैसे कि मधुविद्या में- अश्विनी देवता ने दध्यङ् आथर्वण के पास-
मधुविद्या का उपदेश मांगा था- तब उसने निराकरण किया- तब- उसका कारण
तब उन्होंने उसके सिर को निकालकर घोड़े का सिर लगाया गया; उस घोड़े के मुख से
मधुविद्या का उपदेश दिया- बाद इन्द्र ने दधीचि का सिर काट दिया। तब- अश्विनी ने
उसका सिर उसको लगा दिया- यह ऋग्वेद मंत्र में मूलतः है- इसका सारस्वत बृ० उपनिषत् में
किया गया है- उसका तत्त्वज्ञान प्रकारक है- तदेतद् ब्रह्म अपूर्वम् अनपरम् अनन्तरम् अबाह्यम्।
अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः इत्यनुशासनम्।
वह इन्द्र ही- यह ब्रह्म है- पूर्व और अपर भाव से रहित है। अन्दर और बाह्य से रहित है यह आत्मा
ब्रह्म है। यह सर्वों के अन्तस्फूर्ति अनुभव से सिद्ध है। यह वेद का अनुशासन है,

(उसको सोता का ही औरत थी-)

१ (रामायण में रामचन्द्र की एक पत्नी सीता थी।)

२ महाभारत- इतिहास में तो द्रौपदी की एक ही स्त्री को पांच पांडव पति थे। यह और किसी ऐसी
इतिहास में भी नहीं है। वस्तुतः इसका अर्थ समझाने की आवश्यकता है, नहीं तो
वह केवल गप्प ही होगा- और भ्रम वाचक ही ठहरेगा- इसलिये- विद्वान लोग
उसका खोज करें, एक ही रुद्र भगवान के पशुपति के पांच मुखों के तत्त्व से इस भूमि में पैदा हुए।
ये पांच पांडव हैं- जो धर्मराज भीम- अर्जुन- नकुल सहदेव" ये वैदिक सिद्धान्त से एक ही रुद्र के
तत्त्व से युक्त पांच पुरुष हैं। धर्मराज यम का लड़का है। वह "यम नियन्ता अग्निरूप रुद्र हैं।
यमो ह जातो यमो जनित्वम्- (परोक्ष- ऋग्वेद) भीम वायु का पुत्र। वायु रुद्र का ही पुत्र है-
"आ ते पितर्मरुताम्" हे मरुतां पितः" करके रुद्र का संबोधन है। (३) अर्जुन इन्द्र का पुत्र है।
वह इन्द्र मध्यम लोकाधिपति वैद्युताग्नि का ही स्वरूप है। (४-५) नकुल सहदेव" ये दोनों
अश्विनी का पुत्र है। अश्विनी "वसू रुद्रा पुरुमन्तू- अर्थात् रुद्रवर्तनी- इस मंत्रों में स्पष्ट है,

इसी प्रकार- और एक विशिष्ट तत्त्व का इतिहास है- जो कि मधुविद्या में बताया गया है,
वेद मंत्रों में और उपनिषत् में जो तत्त्वज्ञान उपदिष्ट है। उसी का यह रूपक दृष्टि से
बताया गया है- जो कि- मधुविद्या में अश्विनी देवता ने दध्यङ् आथर्वण से मधुविद्या का
उपदेश मांगा था, तब उसने निराकरण किया था- उसका कारण है इन्द्र का
वचन- इस मधुविद्या को अगर दूसरे को कहोगे तो तेरा सिर काट डालूंगा।

~~यह~~ बात सुनके अश्विनोंने उस ऋषिका सिर काटके घोडेका सिर लगाया, बाद उसने उस घोडेके मुखसे मधुविद्याका उपदेश दिया, यह जानकर इन्द्रने उसका सिर काट दिया, बाद अश्विनोंने दध्यङ् का मुख उसको लगा दिया - यह इतिहास - महाभारतमेंभी है।

ऋग्वेद मंत्र - तद्वां नरा सनये दंस उग्रम० - आथर्वणायाश्विना दधीचे० - पुरश्चक्रे द्विपदः

अथर्ववेद ।) रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव - इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश..

इसका ~~अ~~ व्याख्यान - बृ० उपनिषदमें लिखा है - "अयं वै हरयोऽयं वै दश च शतानि सहस्राणि बहूनि चानन्तानि च तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यं अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः इत्यनुशासनम् -

यह इन्द्र शब्द है ~~अ~~ उसको पूर्व और अपर नहीं है, अन्दर और बाह्य भी नहीं है। सबोंके अन्दर जो आत्मा है वही ब्रह्म है यह सबोंके अन्दर कोस्फुरणसे अनुभवसिद्ध है। यही वेदका अनुशासन है।

(...न्द्रकर्तृन ३२१२६)

१ अयास्य आंगिरसः बृहस्पतिः दे (सप्तशीर्ष्णी· १०। ६७। १)

~~धीशिक्षा~~

धः "इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि॥
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम॥" (वरुणो देवता
— नाभाकः काण्वः (ऋक्.मं. ८।४२।३) (अर्चनाना आत्रेयो वा)

वाक्
॥ सप्तशीर्षाणि धियः· बृहती ॥

॥ ऋक् मन्त्रः॥

"इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत्।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन्॥
(अयास्य आंगिरसः ऋक्.मं. १०।६७।१) (बृहस्पतिर्देवता)

३२१ धीमान् आङ्गिरसो मुनिः सुतपसा सोऽयास्य अन्तर्दृशा
स्वेन्द्रात्मानममुं बृहस्पतिमिमं तुष्टाव ~~सोऽन्तर्दृशा~~ सानन्दशा॥
धीयोगस्य सुसिद्धये सुमहसा स्वानन्दरस्याप्तये
ध्यायन् स्वात्मपरायणः सुमनसा पूर्णात्मसम्पत्तये॥१॥

(इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः)

३२२ सत्यात्मा स इमां धियं सुहृदयां स्वां सप्तशीर्ष्णान्वितां
सञ्जातां च ऋतात्मनोऽत्र बृहतीं ब्रह्मात्मिकां नः पिता॥
देवीं तत्र बृहस्पते भगवतीं स्वां भावयन् भास्वतीं
दिव्यात्मा सविता जगत्प्रसविता सत्योऽन्वविन्दत् सतीम्॥२॥

(तुरीयं स्विज्जनयत्०-)

३२३. विश्वस्यैव सुदर्शकं परतमं पूर्णं तुरीयं पदं
विद्वान् विश्वजनीन उत्तरतमः प्रादुश्चकार स्वयम्।
स्वाङ्गे व्याप्य हि विश्वतन्नरतमः सोऽयास्य आस्वादयन्
प्राणात्माऽऽङ्गिरसः स्वमुक्थवचनं स्वेन्द्राय शंसन् अयजत्॥३॥

॥ धियः तानि सप्तशीर्षाणि ज्ञानेन्द्रियाणि॥
सर्वान्तराणि करणानि योगविधोपकरणानि॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह॥
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्॥ १॥ (कठ.उ.

"तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्॥
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥ २॥"

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते:-

३२४ प्रत्यक्षाण्यखिलानि सहैव मनसा सातीन्द्रियाण्यासते
सोऽत्राद्यति भवन्ति पञ्च नियतो बुद्धिश्च नो चेष्टते य
तामाहुः परमां गतिं तनुभृतां सर्वोत्तमां [illegible] भावोत्तमां
तामेवात्र समामनन्ति रसिका हृद्योगतः सत्तमा य (धीयोगतः) ॥४॥

तां योगमिति मन्यन्ते

३२५- मन्यन्ते हृदि तां परां प्रगतिगां योगं समस्तागमं
स्थैर्यां चेन्द्रियधारणां मननगां निर्युक्ति साधनामगात् य
तद्योगेन च सोऽप्रमत्तहृदयः प्रज्ञानतो राजते
योगोऽयं प्रभवोऽप्ययश्च मनसां [illegible] ॥५॥

~~४८~~

॥ ~~अथ ...~~ ॥

३२४ स्वान्तर्याणि च यानीन्द्रियाणि मनसा पश्यापि तिष्ठन्ति वै
बुद्धिर्नैव विविक्त वै हृदि यदा पूर्णां गतिं तां विदुः।
तान्येवात्मनि संस्थितिं परतमां धीधारणां सुस्थिरां
मन्यन्ते परयोगसिद्धपरतां तत्राप्रमत्तो भवेत् ॥ ४ ॥

॥ तान्येव सप्तर्षिसत्त्वानि प्राणात्मकानि ॥

॥ "अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्।
तस्यासत ऋषयः सप्ततीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदाना।
(याज्ञवल्क्यः) (बृ. उ.)

३२५ सत्पात्रं चमसं हि सोमसवने तत्सोमपानार्थिनं
तच्चाधो विलमूर्ध्वबुध्नमुदितं स्यादूर्ध्वशीर्षाश्रितम्।
तस्मिन् सन्निहितं यशः शिवकरं श्रेयः सुनिश्श्रेयसं
तत्तीरे च समासतेऽत्र पुरुषाः सप्तर्षयः स्वार्थिकाः॥ ५ ॥

"तस्यासत ऋषयः सप्ततीरे इति प्राणा वा ऋषयः प्राणानेवैतदाह" (बृ. उ.)

३२६ प्राणास्ते ऋषयोऽत्र सन्निहिताः स्वस्मिञ्छरीरे स्थिताः
प्रत्यक्चित्स्वचिदात्मनीह हृदये स्वीये कुटीरेऽस्थिताः।
द्रष्टृत्वादिगुणान्वितास्त ऋषयः ज्ञानक्रियाशक्तिकाः
सर्वे धीन्द्रियसत्त्वकाः समुदिताः ध्येयार्थसंसाधकाः॥ ६ ॥

"वागष्टमी ब्रह्मणा संविदानेति वाग्घि अष्टमी ब्रह्मणा संवित्ते।"

३२७ प्रत्यक्चित्स्वपदे प्रचेतनपरे स्वस्मिञ्छरीरेऽन्तरे
वागेवात्र परा प्रचेतनपरा सम्राजते स्वान्तरा।
सेन्द्रात्मा परमात्मरस्य मुदिता ~~वाक्~~ संविदाना ~~[illegible]~~ऽष्टमी।
संवित्ते स्वयमात्मसंविदुदिता ~~वाग्~~ ब्रह्मणा स्वा सा सती ॥ ७ ॥

" अष्टमीं नानुभजाति तस्माद्वाक् सह प्राणैः समानस्थाना सती अननुभक्ताऽसंहिता
(ऐ. आ.)

३२८ वाक् प्राणैः सहिता समानसदना प्रत्यक्चित्सिद्धा सती
सा साक्षादात्मनि संविदाप्रतिहिता सम्राजते साऽष्टमी।
तस्माच्चेतनसत्त्वकात्मनि परा सा नानुभक्ता सती।
तस्मिन् सा प्रतिचेतनाभिरमते सच्चेततां विन्दती ॥ ८ ॥

" अग्नि लोकादीति सप्त तत्त्वानि त्रिस्थान सप्तशीर्षात्मकानि च

" अग्निलोकमन्तरिक्षं द्यौरिति ब्रह्माग्निविद्यामग्निप्रजनं वेद्यात्मकम्। अग्नये स्वाहा। अध्यक्षरम् "

३२० तत्त्वान्याहुः सप्त तानि लयनान्याख्याति सप्तोपया - (तै. शिक्षो.)
न्याप्राणि श्रुति वाङ्मुखौपनिषदान्यन्ताः समस्तान्ययोत्र च.
आद्यं स्यादधिलोकमित्याधिमन्तं तच्चाधिभूतात्मकं
स्वाधिज्योतिषमाधिदैवतपरं तत्राधिविद्यान्तरम् ॥ १० ॥

३२१ लोकेऽधिप्रजमेतदूर्जितमथो जीवात्मसम्बोधनं
सा. [illegible]दध्यात्मं स्वशरीरचेतनपरं तद्वाङ्निवैकायनम् च
वेदार्थं ह्यधियज्ञ[illegible] मुदितं संविक्रियाभावनं
वेद्यं तद्[illegible] श्रुति साध्यसाधनपरं तद्धान्यमध्यक्षरम् ॥११॥

" तामहासंहिता इत्याचक्षते " (तै. शिक्षो.)

३२२ संयुक्ता त्रय-पञ्च सप्त नियतः प्रोक्ता महासंहिताः
सर्वा[illegible] समनन्वयात्समुदिता आद्याः समानाहिताः च
शेषा अग्निसमाहितत्वसहिताः ब्रह्माः समस्ताः समाः
सङ्ख्यातः सकलाः समाश्च विभवाः सोऽप्यानसत्तो तथा ॥१२॥

३२३ प्रत्येकं त्रिकपञ्चसप्तकमिदं सप्ताधिलोकादिषु
प्रत्यक्षं सह सप्तसु प्रतिततं तत्सप्त-सप्तात्मकम् च
तान्येतानि समासतः सह युतैः सैकोनपञ्चाशता
संयुक्तानि परस्परं मिथुनतः स्वस्तैश्च तैः सप्तभिः च ॥१३॥

३२४ आद्येषु त्रिषु तात्त्विकेषु च पुनः योगात्समाहारतः
त्रैधात्मत्वयुतं च मूल सह[illegible] सर्वत्र भावोत्सवतः च
प्रत्यक्षादपरोक्षतश्च परतः सिद्धं परोक्षं स्वकं
त्रित्वे[illegible] तेषु समन्वितं हि परमं तत्त्वं तुरीयात्मकम् ॥१४॥

३२५ नाद स्याद्व्यतिरेकतः परतमं ब्रह्म समस्तं समं
अस्त्वेकव्यतिरिक्तमेव सततं तद्द्विविक्तं स्वयम् ।
सिद्धं यत्र मिवैव तेषु मणिषु प्राप्तं समानात्मकं
सैकानेकपरं समावतमिदं ज्ञानन्तसत्त्वात्मकम् च ॥१५॥

३२६ ॥ॐ॥ कंच उपासते विभवतः तत्स्यादपूर्णं स्वयं
नानस्यात् तदुपासनं समधियः पूर्णं हि तत्त्वान्वयम् ।
तत्त्वेषु त्रिषु पञ्चसु प्रतिहितं सप्तस्वपि स्यात्स्वकं
सत्त्वं चेत लब्धं वानेषु नियतं [illegible] तद्वाततम् ॥१६॥

પ્રથમં ત્રિવૃત્કરણમ્॥

૩૩૭- "પ્રાક્સ્માદુદિતં સમં પ્રથમતો દ્વેધા વિભક્તં સતઃ
સૈકં તદ્ દ્વિતયં ચ ભૌમિથુનવત્ સ્તાદાત્મ્ય યોગાત્તતઃ।
સદ્ રૂપાત્ પ્રથિતં તુ તત્ત્રનિયતં સિદ્ધં દ્વયોરેવ તત્
સન્ધ્યં તચ્ચ ~~સ~~ યોર્હિ તં સદુભયો સિદ્ધ્યેત્ તૃતીયં પદમ્॥૧૭॥

આદ્યં અધિલોકં તત્ત્વમ્॥ અધિભૂતાત્મકમ્

~~૩૩૮~~ આદ્યં સ્યાદધિલોકમેતદુદિતં તદ્ ભૂર્ભુવઃ સ્વઃ પદં
ભૂર્ભૂમિશ્ચ ભુવોઽન્તરિક્ષમુચિતં સ્વર્દ્યૌસ્તૃતીયં પદમ્॥ +

અધિભૂતમ્. તદ્ ભૂતં હિ સદાત્મનાશ્રિતપ~~દ~~ત્ ~~વ~~ ત્રીણ્યાદિભૂતાનિ વૈ
તેજોઽબન્નપરાણિ યોપનિબદ્ધં તચ્ચાધિભૂતાત્મકમ્॥ ~~૧૮~~॥

અન્તરિક્ષં ગુહ્યં - સ્વાન્તરીયં પદમ્ - તિરશ્ચો સંવૃતયઃ - યજુર્મન્ત્રરૂપાઃ

·+ મધ્યે સાન્નિધ્યદેઽન્તરિક્ષમુદિતં તચ્ચાત્ર ગુહ્યં પદમ્.

વાચો - ~~તિરશ્ચો~~ આહુતિયો યજુર્મન્ત્ર~~રૂપાઃ~~ ~~યજુ~~ ઓતિસ્ત્રયાધારકાઃ ॥ ૧૮ ॥
સ્વપરાઃ
૩જું પદં - (પ્રથમં આધારરૂપકં ભુવનં અધિ~~લોક~~ ~~પરમ~~ પર.
(નાકં તદ્ ભુવનં તુરીયં અક્ષરાર્થકં પરમં ઓમાત્મકમ્.) (સપ્તકમ્.

~~૩૩૯~~ "ઋચો અક્ષરે પરમે વ્યોમન્ યસ્મિન્ દેવા અધિ વિશ્વે નિષેદુઃ॥ (ઋ. ૧।૧૬૪।૩૯)

૩૩૮

॥૧૯॥

॥તસ્મિન્નિદ્ ગર્ભં પ્રથમં દધ્ર આપો યત્ર દેવાઃ સમગચ્છન્ત વિશ્વે॥
· અજસ્ય નાભાવધ્યેકમર્પિતં યસ્મિન્ વિશ્વાનિ ભુવનાનિ તસ્થુઃ॥ (ઋ. ૧૦

૩૩૯

યસ્મિન્ વિશ્વાનિ ભુવનાનિ તસ્થુસ્તિસ્રો દ્યાવસ્ત્રેધા સસ્રુરાપઃ ૫.૭।

૩૪૦

~~सावित्री~~ त्रि
वा: तिस्रो द्यावः ~~त्रीणि~~ भुवनानि कालः नक्षत्राणि

"तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्॥
३५२ आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् (ऋ.

अग्नि
॥वसन्त्रीणि च ~~तैके चक्रे~~ विश्वरूपस्य रस्य॥ ॥२२५

"द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः॥
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः॥ (ऋ.)

३५३

॥२२६-

वा: तिस्रो द्यावः द्व-
(तिस्रः पृथिव्यः) तिस्रो भूमयः- ~~(तिस्र~~ त्रिचक्रादिकालः)

"तिस्रो भूमीर्धारयन्त्रीँरुत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्

३५४

॥२४५

अधः संस्थाः । ऊर्ध्वसंस्थाः-
तिस्रः पृथिव्यः- (अतलम्‌ वितलम्‌- सुतलम्‌ रसातलम्‌ महातलम्‌ पातालम्‌)

॥